# भारतीय शासन अधिनियम, 1919
## (GOVT. OF INDIA ACT, 1919)

1919 का भारतीय शासन अधिनियम माण्टेग्यू घोषणा को क्रियान्वित करने की दिशा में प्रथम चरण था। इसने बहुत महत्वपूर्ण परिवर्तन किये और भारत में प्रतिनिध्यात्मक संस्थाओं के विकास का एक नवीन युग प्रारम्भ किया। **श्री एन. श्रीनिवासन** के अनुसार, "**यह नौकरशाही शासन की पद्धति का प्रथम उल्लंघन और प्रतिनिध्यात्मक शासन का वास्तविक प्रारम्भ था।**"[1] कूपलैण्ड ने इन महत्वपूर्ण परिवर्तनों के सम्बन्ध में लिखा था, "**इसने विधायी और कार्यपालिका सत्ता के बीच की सीमा-रेखा को समाप्त कर दिया। पूर्वकालीन सुधारों द्वारा भारतीयों को व्यवस्थापिकाओं पर नियन्त्रण की शक्ति दी गयी थी, शासन पर नहीं। अब भारतीयों को शासन के महत्वपूर्ण विभागों का कार्य सम्भालना था और वे इन व्यवस्थापिकाओं के निर्वाचित बहुमत के प्रति ही उत्तरदायी थे।**"[2]

**अधिनियम की प्रस्तावना**—सुधारों के उद्देश्य का उल्लेख व्यापक रूप में अधिनियम की प्रस्तावना में ही कर दिया गया था। वस्तुतः यह अगस्त 1917 की घोषणा के समान ही था। **सर तेजबहादुर सप्रू** द्वारा अधिनियम की प्रस्तावना का विश्लेषण इस प्रकार किया गया था :

(1) ब्रिटिश भारत ब्रिटिश साम्राज्य का अखण्ड भाग रहेगा।

(2) ब्रिटिश भारत में उत्तरदायी शासन संसद की घोषित नीति का लक्ष्य है।

(3) उत्तरदायी शासन धीरे-धीरे ही दिया जा सकता है।

(4) उत्तरदायी शासन की स्थापना के लिए आवश्यक है कि दो बात की जायें, प्रशासन की हर शाखा से भारतीयों का अधिकाधिक सम्बन्ध और स्वशासी संस्थाओं का क्रमिक परिवर्तन।

अधिनियम की प्रस्तावना से नितान्त स्पष्ट है कि इसमें साम्राज्य के बाहर स्वतन्त्र भारत की कल्पना नहीं की गयी है। प्रस्तावना में यह बात स्पष्ट थी कि ब्रिटिश पार्लियामेण्ट भारत को सदैव अपने प्रभुत्व में बनाये रखना चाहती है और यह बात भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस तथा भारत के अन्य राजनीतिक दलों की आशाओं के अनुकूल नहीं थी। इसके अतिरिक्त, भारतीयों की राजनीतिक प्रगति के निर्णय का भार ब्रिटिश पार्लियामेण्ट को सौंपना निश्चित रूप से अपमानजनक था। इस प्रकार 1919 के अधिनियम की प्रस्तावना बहुत दोषपूर्ण थी और यह भारतीयों में उत्साह उत्पन्न करने में असमर्थ रही।

## भारतीय शासन अधिनियम, 1919 के प्रमुख लक्षण

(1) **प्रान्तों में आंशिक रूप से उत्तरदायी शासन**—1919 के अधिनियम का सबसे अधिक महत्वपूर्ण लक्षण प्रान्तों में आंशिक रूप से उत्तरदायी शासन-व्यवस्था की स्थापना था। इसके अनुसार प्रान्तीय शासन दो भागों में विभाजित किया गया था—**रक्षित विषय** (Reserved Subjects) और **हस्तान्तरित विषय** (Transferred Subjects)। रक्षित विषय पहले की तरह ही गवर्नर के प्रति उत्तरदायी कार्यकारिणी परिषद के सदस्यों के अधीन थे और इन पर व्यवस्थापिका का कोई नियन्त्रण नहीं होना था। लेकिन हस्तान्तरित विषय लोकप्रिय मन्त्रियों को सौंप दिये गये, जो व्यवस्थापिका के निर्वाचित बहुमत में से चुने जाते थे और उनके प्रति

Scanned with CamScanner

ही उत्तरदायी होते थे। प्रान्तीय शासन को दो भागों में बांट देने की इस व्यवस्था को ही द्वैध शासन-व्यवस्था का नाम दिया गया।

(2) **प्रान्तीय कार्यकारिणी परिषद में अधिक भारतीयों को संयुक्त करना**—अधिनियम के द्वारा यद्यपि रक्षित क्षेत्र का प्रशासन गवर्नर के अधीन रखा गया था, लेकिन प्रान्तों की कार्यकारिणी परिषदों में भी भारतीय सदस्यों की संख्या पहले से बढ़ा दी गयी। मद्रास, बम्बई और बंगाल की सरकारों के रक्षित भागों के 4 सदस्यों में से 2 भारतीय सदस्य लेने की व्यवस्था की गयी। शेष 6 प्रान्तों में जहां कार्यकारिणी परिषद को रक्षित भाग के लिए केवल दो सदस्य होने थे, एक भारतीय रखा गया। इन सदस्यों की नियुक्ति भारत-मन्त्री की सिफारिश पर ब्रिटिश सम्राट द्वारा की जाती थी।

(3) **प्रान्तीय विधान परिषदों का पुनर्गठन**—इस अधिनियम के द्वारा प्रान्तीय विधान परिषदों का पुनर्गठन किया गया। उनकी संख्या में वृद्धि करते हुए बड़े प्रान्तों की परिषदों में अधिक से अधिक 140 और छोटे प्रान्तों में कम से कम 60 सदस्य रखने की व्यवस्था की गयी। इन सदस्यों में कम से कम 80 प्रतिशत सदस्य निर्वाचित होने जरूरी थे, सरकारी सदस्यों की संख्या 20 प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकती थी और शेष 10 प्रतिशत गैर-सरकारी सदस्य होते थे, जिन्हें गवर्नर मनोनीत करता था। इस प्रकार विधान सभाओं का स्वरूप अधिक लोकतन्त्रात्मक बनाया गया, उनमें निर्वाचित सदस्यों का बहुमत रखा गया तथा उसके अधिकारों में वृद्धि की गयी।

(4) **केन्द्र में अनुत्तरदायी शासन**—अधिनियम द्वारा प्रान्तों में तो आंशिक रूप से उत्तरदायी शासन की स्थापना की गयी, लेकिन केन्द्रीय शासन को पहले की तरह ही केन्द्रीय विधानमण्डल के प्रभाव से मुक्त अर्थात् अनुत्तरदायी रखा गया। यद्यपि व्यवस्थापिका सभा शासन को प्रभावित कर सके, इस उद्देश्य से व्यवस्थापिका सभा का विस्तार कर दिया गया और उसके अधिकारों में वृद्धि की गयी, लेकिन इसके साथ ही गवर्नर जनरल को कुछ ऐसे विशेषाधिकार प्रदान किये गये, जिनका प्रयोग वह व्यवस्थापिका की सहमति के बिना कर सकता था।

(5) **केन्द्रीय कार्यकारिणी परिषद में अधिक भारतीयों की नियुक्ति**—यद्यपि इस अधिनियम के द्वारा गवर्नर जनरल को पहले की तरह निरंकुश, स्वेच्छाचारी तथा शक्तिशाली बना रहने दिया गया था लेकिन केन्द्रीय कार्यकारिणी परिषद में कुछ सुधार अवश्य ही किये गये। नवीन नियमों के अनुसार अब (i) कार्यकारिणी पर से पूर्व निर्धारित संख्या सम्बन्धी प्रतिबन्ध हटा दिया गया। (ii) भारतीय उच्च न्यायालय के उन वकीलों को, जिन्हें उनमें कार्य करते हुए 10 वर्ष हो चुके हों, परिषद का **लॉ मेम्बर** (Law member) होने के योग्य ठहराया गया। **श्री तेजबहादुर सप्रू** पहले भारतीय लॉ सदस्य हुए। (iii) कार्यकारिणी परिषद में भारतीयों की संख्या एक से बढ़ाकर तीन कर दी गयी। लेकिन व्यवहार में जिन व्यक्तियों को कार्यकारिणी परिषद का सदस्य नियुक्त किया गया वे जनता के प्रतिनिधि न होकर सरकार के **'जी हजूर'** (Yes men) थे और कार्यकारिणी परिषद के भारतीय सदस्यों को कम महत्वपूर्ण विभाग दिये जाते थे। इसलिए सुधार का कोई विशेष प्रभाव न पड़ा।

(6) **द्वि-सदनात्मक केन्द्रीय विधानसभा का निर्णय**—इस अधिनियम द्वारा केन्द्रीय क्षेत्र में एक-सदनात्मक व्यवस्थापिका के स्थान पर द्वि-सदनात्मक व्यवस्थापिका की स्थापना की गयी। इन दोनों सदनों के नाम केन्द्रीय विधानसभा तथा राज्यपरिषद रखे गये। केन्द्रीय विधानसभा

Scanned with CamScanner

में 143 सदस्य होते थे, जिनमें से 103 का चुनाव होता था व शेष मनोनीत होते थे। मनोनीत सदस्यों में 25 सरकारी तथा 15 गैर-सरकारी होते थे। 103 निर्वाचित सदस्यों में से 51 सामान्य निर्वाचन क्षेत्रों से, 32 साम्प्रदायिक चुनाव क्षेत्रों से (30 मुसलमानों तथा 2 सिखों के द्वारा) तथा 20 विशेष चुनाव क्षेत्रों (7 जमींदारों, 9 यूरोपियनों तथा 4 व्यापार मण्डलों के द्वारा) से चुने जाते थे। राज्यपरिषद में 60 सदस्य होते थे, जिनमें से 33 का चुनाव होता था और 27 गवर्नर जनरल द्वारा मनोनीत होते थे।

(7) **भारतीय शासन पर गृह सरकार के नियन्त्रण में कमी**—माण्टफोर्ड रिपोर्ट में प्रान्तीय तथा केन्द्रीय शासन के परिवर्तनों को दृष्टि में रखते हुए भारतीय शासन पर गृह सरकार (Home Government) के नियन्त्रण में शिथिलता का जो सुझाव दिया गया था, उसे अधिनियम के अन्तर्गत स्वीकार किया गया। परन्तु गृह सरकार के नियन्त्रण में कमी करने के लिए भारत मन्त्री के अधिकारों में किसी प्रकार का औपचारिक परिवर्तन नहीं किया गया, परन्तु यह आशा व्यक्त की गयी कि समय के साथ-साथ यह नियन्त्रण कम हो जायगा। इस सम्बन्ध में यह परम्परा विकसित करने का प्रयत्न किया गया कि यदि किसी विषय के सम्बन्ध में गवर्नर जनरल तथा केन्द्रीय व्यवस्थापिका परस्पर सहमत हों, तो गृह सरकार उसमें हस्तक्षेप नहीं करेगी। यह आशा व्यक्त की गयी कि प्रान्तीय शासन के हस्तान्तरित क्षेत्र में गृह सरकार द्वारा हस्तक्षेप नहीं किया जायगा।

(8) **भारत परिषद में परिवर्तन**—इस अधिनियम के अन्तर्गत भारत परिषद को समाप्त करने की भारतीय मांग तो स्वीकार नहीं की गयी लेकिन भारत परिषद के गठन में परिवर्तन किये गये। इसमें कम से कम 8 और अधिक से अधिक 12 सदस्य नियुक्त करने की व्यवस्था की गयी। इन सदस्यों में कम से कम आधे ऐसे सदस्य होने जरूरी थे, जो नियुक्ति की तिथि के समय से पूर्व भारत में कम-से-कम 10 वर्ष रह चुके हों और इस देश को अपनी नियुक्ति की तिथि के 5 वर्ष से अधिक पूर्व न छोड़ा हो। इस परिषद का कार्यकाल 7 वर्ष से घटाकर 5 वर्ष कर दिया गया, लेकिन प्रत्येक सदस्य की आय बढ़ाकर 1,000 पौंड से 1,200 पौंड कर दी गयी और भारतीय सदस्य के लिए 600 पौंड के अतिरिक्त भत्ते की व्यवस्था की गयी। भारतीय परिषद के कार्य-संचालन के नियमों में भी परिवर्तन किये गये।

(9) **केन्द्रीकरण से विकेन्द्रीकरण**—अधिनियम के द्वारा केन्द्रीकरण की उस नीति को समाप्त कर दिया गया, जो लार्ड कर्जन के समय में चरमोत्कर्ष पर पहुंच गयी थी। प्रशासन और राजस्व के कुछ विषयों का विकेन्द्रीकरण कर दिया गया अर्थात् उन्हें केन्द्रीय सरकार के नियन्त्रण से हटाकर प्रान्तीय सरकार में दे दिया गया। प्रान्तों को प्रथम बार ऋण लेने तथा कर लगाने का अधिकार भी प्रदान किया गया। प्रान्तों में आंशिक रूप से उत्तरदायी शासन की स्थापना करके भी विकेन्द्रीकरण और प्रान्तीय स्वायत्तता की नीति को ही पूरा किया गया।

(10) **शक्ति विभाजन**—अधिनियम के द्वारा केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों के बीच शक्ति विभाजन भी किया गया। वे विषय जो लगभग सम्पूर्ण भारत या अन्तर्प्रान्तीय हितों से सम्बन्धित थे, केन्द्र के अधीन रखे गये तथा जो विषय प्रान्तीय हितों से विशेष सम्बन्ध रखते थे, प्रान्तों के अन्तर्गत रखे गये। केन्द्र के अधिकार में वैदेशिक विषय, सेना, रेल, डाक व तार, आय-कर, मुद्रा टंकण, व्यापार, जहाजरानी, चुंगी तथा महसूल और दीवानी व फौजदारी कानून रखे गये। प्रान्तीय क्षेत्र के अन्तर्गत स्थानीय स्वशासन, सार्वजनिक कार्य, शिक्षा, जनस्वास्थ्य तथा

Scanned with CamScanner

चिकित्सा, सिंचाई, अकाल पीड़ित सहायता, राजस्व कर, कृषि, जंगल, जेल व पुलिस तथा न्याय-व्यवस्था का कुछ भाग रखा गया। इस प्रकार प्रान्तीय विषयों पर प्रशासन एवं व्यवस्थापन प्रान्तों को सौंप दिया गया।

(11) **निर्वाचन तथा मताधिकार**—इस अधिनियम ने प्रत्यक्ष निर्वाचनों का सूत्रपात किया और मताधिकार को बढ़ा दिया। नवीन निर्वाचन नियमों के अनुसार भारत की लगभग 10 प्रतिशत जनता को मताधिकार प्रदान किया गया। यद्यपि माण्टफोर्ड रिपोर्ट में साम्प्रदायिक निर्वाचनों की निन्दा की गयी थी, लेकिन अधिनियम में न केवल मुसलमानों के लिए इस पद्धति को बनाये रखा गया, वरन् इस पद्धति को पंजाब में सिखों के लिए, तीन प्रान्तों को छोड़कर शेष राज्यों में यूरोपियन के लिए, दो प्रान्तों में आंग्ल भारतीयों के लिए और एक प्रान्त में भारतीय ईसाइयों के लिए लागू कर दिया गया।

(12) **नरेश मण्डल की स्थापना**—माण्टफोर्ड रिपोर्ट में देशी राजाओं के महत्व को ध्यान में रखते हुए एक '**नरेश मण्डल**' के निर्माण का सुझाव दिया गया था। अतः 8 फरवरी, सन् 1921 को दिल्ली में '**नरेश मण्डल**' (Chamber of Princes) की स्थापना की गयी। इस मण्डल की कुल सदस्य संख्या 121 थी, जिसमें 109 तो अधिक महत्वपूर्ण देशी रियासतों के प्रतिनिधि थे और 12 सदस्य कम महत्वपूर्ण रियासतों के प्रतिनिधि थे। इस मण्डल का प्रधान वायसराय था और मण्डल वास्तव में, एक परामर्शदात्री सभा के समान था।

(13) **संक्रमणकालीन उपाय**—1919 का अधिनियम स्पष्टतः एक प्रयोग व संक्रमणकालीन उपाय था। यह केवल एक अल्पकालीन उपाय था तथा इसके अनुसार, जैसा कि **लार्ड मैस्टन** ने कहा था, "**स्वेच्छाचारी शासन तथा लोकतन्त्र उस समय तक साथ-साथ हाथ मिलाकर चलने को बाध्य थे, जब तक लोकतन्त्र स्वयं चलना न सीख ले और अकेला चलने के विश्वास योग्य न हो जाय।**" ब्रिटिश संसद में भाषण देते हुए स्वयं **मि. माण्टेग्यू** ने कहा था कि "**यह तो अन्तरकालीन उपाय है। भारत पर ब्रिटिश संसद द्वारा शासन और भारतीय जनता के प्रतिनिधियों द्वारा शासन के बीच में यह एक प्रकार का पुल है।**" अधिनियम की संक्रमणकालीनता इस बात से भी स्पष्ट हो जाती है कि अधिनियम के द्वारा 10 वर्ष बाद एक '**रॉयल कमीशन**' की नियुक्ति का विधान किया गया था, जो माण्टफोर्ड सुधारों की योजना के अधीन की गयी उन्नति का अध्ययन कर पूर्ण उत्तरदायी शासन की दिशा में आगे बढ़ने के लिए उचित कदमों का निर्देश करे।

Scanned with CamScanner